

# आवर्तनशील अर्थशास्त्र - अध्याय - १

## भूमिका

इस अनुभवात्मक अध्यात्मवादी प्रबंध को मानव के कर कमलों में अर्पित करते हुए परम प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ ।

अनुभवात्मक अध्यात्मवाद अपने में अनुभवमूलक विधि से जीता जागता हुआ मानव की आपसी चर्चा है या दूसरी

भाषा में अनुभवमूलक विधि से जीता जागता विवेक और विज्ञान की परामर्शात्मक प्रस्तुति है ।

सौभाग्य यह रहा कि सह-अस्तित्व रूपी अस्तित्व में अनुभव करने और उसकी अभिव्यक्ति को प्रस्तुत करने की

सुखद घटना मेरे इस शरीर यात्रा में घटित हुई । यह मेरे ही स्वयं स्फूर्त जिज्ञासा की परिणिति रही । नियति के अनुसार, अनुभव को व्यक्त करने का स्वरूप, प्रक्रिया, लक्ष्य और दिशा मुझे स्पष्ट हुई, जिसके आधार पर इस कृति की रचना संभव हो पाई ।

जितनी भी सुनी हुई बातें हैं, उसके सार संक्षेप में, मेरे स्वयं को प्रमाणित होना ही, मेरा उद्देश्य बना रहा । इसी

मानसिकता की गति जिज्ञासा में, जिज्ञासा शोध में, शोध अनुसंधान में प्रवर्तित होने के फलस्वरूप, नियति के अनुरूप होना संभव हो गया । अनुभवात्मक अध्यात्मवाद पूरा प्रबंधन रूप में साकार हुआ ।

इस अभिव्यक्ति की संप्रेषणा में यही आशय निहित है कि अपने में अनुभव को भाषा रूप देना बन गया है । उसी

प्रकार इसे अध्ययन करने वाले हर व्यक्ति में, भाषा को अर्थ रूप में स्वीकारने की महिमा समाई हुई है । इसी विरवास से इसको मानव में, से, के लिए अर्पित करना संभव हुआ ।

यह मैं अथ से इति तक अनुभव किया हूँ कि अनुभवमूलक विधि से किया गया सूझ-बूझ अर्थात् लक्ष्य और

दिशा के अनुसार योजना और कार्य योजना तथा फल परिणाम – ऐसे फल परिणाम का अनुभव के अर्थ में सार्थक होना ही सर्वमानव सौभाग्य का स्वरूप होना पहचाना गया । इसी कारणवश इसे मानवता के लिए अर्पित किया गया है । इसी से अर्थात् अनुभवमूलक प्रणाली से न्यायपूर्वक जीना, समाधानपूर्वक जीना, व्यवस्था में जीना, समग्र व्यवस्था में भागीदारी करना,

यह सभी संभव हो चुका है ।

समग्र व्यवस्था में भागीदारी करने का तात्पर्य – मानवीय शिक्षा कार्य में, न्याय सुरक्षा कार्य में, परिवार की आवरयकता से अधिक उत्पादन कार्य में, लाभ-हानि मुक्त विनिमय कार्य में, स्वास्थ्य-संयम कार्य में भागीदारी करने से है ।

हम यह भी अनुभव कर चुके हैं कि हर समझदार मानव परिवार का समाधान समृद्धिपूर्वक जीना सुलभ होगा । मेरा यह भी विरवास है कि हर मानव अर्थात् प्रत्येक नर-नारी समाधान, समृद्धि के प्यासे हैं । यह प्यास तृप्ति में परिवर्तित हो, यही इस

अनुभव दर्शन का मूल उद्देश्य है । इसका मानव में स्वीकृत होना, नियति विधि और नियति होने के आधार पर इसका लोककव्यापीकरण होना आवरयक है ।

इसे स्वीकारने के उपरान्त ही, इसे प्रस्तुत किया । मुझे पूरा भरोसा है कि मानव कुल में आदि काल से

बनी हुई अभ्युदय की अपेक्षा प्रयासों के क्रम में यह ग्रन्थ सार्थकता की मंजिल तक पहुँचाने में उपयोगी होगा ।

जय हो ! मंगल हो !! कल्याण हो !!!

– ए. नागराज

भ्रमित स्थिति में मानवीयता के विपरीत जीवों के सदृश्य जीना देखने को मिलता है, जबकि मानव की मौलिकता मानवीयता ही है । जागृति सहज विधि से मानवीयता स्वयं स्फूर्त विधि से प्रमाणित होती है ।

अनुभव (जागृति) के परचात् नैतिकता पूर्वक मानव व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह कर पाता है, चरित्रपूर्वक व्यवहार करता है और संबंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्तिपूर्वक जी पाता है । यही सुख, सुन्दर और समाधानपूर्वक जीने की कला का स्वरूप है ।

जागृति के अनन्तर हर व्यक्ति स्वाभाविक रूप में असंग्रह प्रतिष्ठा को समृद्धिपूर्वक, स्नेह प्रतिष्ठा को पूरकतापूर्वक, विद्या प्रतिष्ठा को जीवन विद्यापूर्वक, सरलता प्रतिष्ठा को सह-अस्तित्व-दर्शनपूर्वक, अभय प्रतिष्ठा को मानवीयतापूर्ण आचरणपूर्वक वैभवित होने के लिए कार्य करता हुआ देखने को मिलता है ।

जागृत जीवन ही ज्ञाता है, जीवन सहित सम्पूर्ण अस्तित्व ज्ञेय है और जागृत जीवन का परावर्तन क्रियाकलाप ही ज्ञान है ।

आशा बंधन इन्द्रियों द्वारा सुखी होने के रूप में, विचार बंधन व्यक्ति द्वारा अपने विचारों को श्रेष्ठ मानने के रूप में और इच्छा बन्धन रचना कार्य की श्रेष्ठता को स्पष्ट करने के रूप में होता है ।

जीवन नित्य होने के कारण अस्तित्व में ही वर्तमान रहता है । यही मानव शरीर यात्रा समय में मानव कहलाते हैं, शरीर त्यागने के उपरांत यही देवी, देवता, भूत-प्रेत कहलाते हैं ।

## अध्याय १: अर्थ को पहचानने की शुरूआत क्रम से अर्थ की परिभाषा/मान्यता

अर्थ को पहचानने की शुरूआत क्रम से अर्थ की परिभाषा/मान्यता

वर्तमान में इस धरती पर मानव परंपरा में लेन-देन का जो क्रियाकलाप है पत्र मुद्रा पर आधारित है । प्रतीक मुद्रा के रूप में छपे कागज पर एक से हजारों की संख्या लिखी रहती है और उसी के आधार पर उस मुद्रा का मूल्य माना जाता है । ऐसे सभी कागज वस्तुओं के अनुपलब्धता की स्थिति में एक व्यक्ति के लिए अनाज या एक व्यक्ति की प्यास बुझाने का कार्य नहीं कर सकते ।

आर्वतनशील अर्थशास्त्र को हमें लोकमानस के सम्मुख प्रस्तुत करने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ ।

इसके पहले अभी तक व्यक्तिवादी समुदायों के रूप में गुजरी बीती मानव परंपरा में तत्कालीन विधियों से मानव को ही स्वीकृत अर्थ का स्वरूप, परिवार में आबंटन, अथवा, बंटन समुदायों में विनिमय, आवश्यकता, संभावना, स्रोत और मानव से किया गया प्रवृत्तियों और कार्यों का सामान्य स्पष्टीकरण को उचित समझकर उसे भी प्रस्तुत किए हैं ।

मूलतः आदिमकालीन मानव की परंपरा का संबंध वर्तमान से जुड़ा होना स्वाभाविक है । दूसरी भाषा से नियति सहज है । स्वाभाविक का तात्पर्य हर काल देश में मानव अपनी अपनी सीमा में ही 'स्व' को स्वीकार करता हुआ इस धरती पर जीया हुआ है । इसका प्रमाण क्रमागत रूप में पायी जाने वाली पीढ़ी से पीढ़ी ही है । नियति का तात्पर्य विकास क्रम, विकास और जागृति क्रम, जागृति से है । जागृति का तात्पर्य जानने-मानने-पहचानने-निर्वाह करने वाला मानव ही है ।

जब कभी भी एक से अधिक मानवों का होना सात्रिध्य रूप (सात्रिध्य का तात्पर्य साथ-साथ रहने से हैं) में होता है, तभी एक-दूसरे की पहचान होना स्वाभाविक है । संचेतनशीलता सहज मानव में पहचानने की क्रिया ही न्यूनतम संचेतना का प्रमाण है और सम्बन्धों की पहचान भी न्यूनतम संचेतना का द्योतक है । इसका प्रमाण है, आज भी प्रत्येक स्वस्थ मानव, न्यूनतम रूप में आसपास की चीजों को पहचानता है । आस-पास का तात्पर्य शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधेन्द्रियों की पहुँच की सीमा है । संचेतना का तात्पर्य भी जानने मानने पहचानने एवं निर्वाह करने से है । इस प्रकार इस धरती पर आदिमानव शरीर रचना बंदर भालू आदि किसी जीव जानवरों के शरीर में रचित होकर धरती में

स्थापित होना स्वाभाविक रहा । क्योंकि इस धरती में मानव शरीर रचना के पहले किसी एक प्रजाति के जीव शरीर रचना और उसकी परंपरा स्थापित होने के उपरान्त दूसरे प्रजाति की शरीर रचना सहित परंपरा विधियों से विकसित होना देखा जाता है । मेधस युक्त शरीरों में समृद्ध मेधस युक्त शरीरों के क्रम को इस धरती पर देखा जा सकता है । इसी क्रम में मानव शरीर रचना का भी उद्भूत होना, मेधस रचना क्रम एवं उसकी परिपूर्णता के अर्थ में मानव शरीर में ही सर्वोपरि समृद्ध मेधस रचना एवं उसके अनुरूप शरीर कार्य तंत्र स्पष्ट हो चुका है । इसी के साथ यह भी स्पष्ट है कि मानव शरीर रचना के पहले की जितने भी प्रकार के शरीर रचनाएं प्रस्तुत हैं वे भी समीपस्थ वस्तुओं घटनाओं से व्यंजित होना दिखाई पड़ती हैं । व्यंजित होने का तात्पर्य तुरंत ही उस ओर (समीचीन शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) अपने प्रवृत्ति को नियोजित करता हुआ से है । इसलिए आदिमानव का भी समीचीन स्थिति, गति, घटनाओं से व्यंजित होना सहज सिद्ध होता है ।

एक से अधिक मानवों के लिए सर्वप्रथम रूप के आधार पर संबंधों को पहचानना स्वाभाविक रहा है फलस्वरूप आवश्यकताएं उद्भूत होना अर्थात् आशा-विचार-इच्छा के रूप में गतित होना रहा है । इसी क्रम में खाने-पीने के लिए पहली आवश्यकता, बैठने-सोने स्थल की आवश्यकता, शीत-वात-वर्षा से बचने के लिए आवश्यकताएं उद्भूत होती रही । इसी क्रम में पत्ते, वल्कल और घास-फूस से काम लेता हुआ मानव कन्द-मूल तक पहचानने की क्रिया सम्पादित करता रहा । साथ ही क्रूर जीव- जानवरों के उपद्रवों से बचने के उपायों को खोजता ही रहा । साथ ही प्रजनन कार्य सम्पन्न होता ही रहा । संतानों का पालन-पोषण-लालन मानव से पूर्व में रही जीवों से भिन्नता को पहचानना रहे आया ।

यह भी स्वाभाविक है कि विभिन्न भौगोलिक परिस्थिति की जलवायु भिन्नताएं तब भी रही हैं, अभी भी हैं । अस्तु ऐसी विभिन्न जलवायु और भौगोलिक परिस्थितियों में शुभारंभ किए हुए मानव परंपराएं अपने-अपने रूप (नस्ल) और रंग के साथ होती रही । यही मूलतः जब एक दूसरे जलवायु में पले मानव को देखने को मिला कि नस्ल और रंग की भिन्नतावश द्वेष अथवा भय के आधार पर परस्पर मार-पीट करते आए । यह क्रम जंगलों से कबीला, ग्राम-समूह तक पहुंचने के लिए मानव में पाई जाने वाली कल्पनाशीलता, कर्म स्वतंत्रता की महिमावश प्रवृत्ति और प्रयास स्फूर्त होता रहा । क्योंकि हर मानव में कल्पनाशीलता और कर्म स्वतंत्रता प्रमाणित होते ही रहा । यही प्रवृत्ति और

कल्पनाशीलता सहज उद्गमन का भी तात्पर्य है । यही पीढ़ी से पीढ़ी में परिवर्तन का कारण रहा है । परिवर्तन वन-वनस्पति-काष्ठ युग से शिलायुग और धातुयुग तक पहुँचा । यह ग्राम और कबीले के रूप में जीने तक पहुँच गया । कुछ परिवेश में जीते आये मानव ने जीव-जानवरों को अपने आहार के रूप में स्वीकारा, कुछ परिवेश में जीये हुए मानव, वनस्पतियों से पेट भरना सीखते आया । अधिकांश मानव जो आहार को वनस्पतियों से प्राप्त करते रहे हैं वे युग परिवर्तन क्रम में कृषि कार्य को अपनाए । यहाँ यह तथ्य स्मरणीय है कि वन से मानव के खाने योग्य चीजों को अनाज के रूप में भी पहचानना आरंभ हुआ । साथ ही जंगल में पाये जाने वाले कुछ प्रकार के जानवरों को स्वाभाविक रूप में ही मानव ने अपनी नैसर्गिकता प्रदान कर, उपयोग करने के अर्थ को सार्थक करते आया । उपयोगिताएं कृषि के लिए सहायक होने के क्रम में और आहार के लिए सहायक होने के क्रम में सोची गई । इस स्थिति तक मूलतः आवश्यकताएं खाने-पीने ओढ़ने-पहनने के साथ-साथ सोने और रहने के निश्चित स्थान, उसके स्वरूप तक पहुँचे । नस्ल और रंग संबंधी भय और द्वेष, विविध कबीला समूहों ग्रामवासियों के साथ बना ही रहा । अपनी-अपनी प्रजाति के समूहों को सुदृढ़ बनाने के क्रम में, सतत परिवर्तन होते ही रहा । हर परिवर्तन के साथ आवश्यकताओं का स्वरूप, तादात और गुणवत्ता अपने आप बदलती रही । यह दो विधाओं में अपने-आप स्पष्ट होते आई । पहला-आहार-आवास, अलंकार विधा में परिवर्तन, दूसरा भय और द्वेषवश आक्रमण-प्रतिरोध कार्यों के क्रम में घूंसा, झापड़, गला घोटने की क्रियाओं से चलकर पत्थर और डंडे से मारपीट करने की एक लहर रही । पत्थर और डंडे के मारपीट से धातुओं से बनी हुई औजारों का प्रयोग अपने आप में और एक कदम रहा । मारपीट में, आक्रमण और प्रतिरोध में एक और परिवर्तन का स्वरूप रहा । इस अवधि तक यह आक्रमण और प्रतिरोध का कार्यक्रम दो विधाओं में गुजरते रहे । पहली विधा क्रूर जन्तुओं के आक्रमण का प्रतिरोध और दूसरी भयभीत मानवों के ऊपर किए गये आक्रमण और उसका प्रतिरोध के इस अवधि तक औजारों को (अर्थात् मारपीट के लिए प्रयोग किए गये औजारों को) और आहार-आवास अलंकार के लिए प्राप्त वस्तुओं का एक दूसरे के बीच स्वेच्छा पूर्वक आदान-प्रदान होते रहा । दूसरा, एक दूसरे की वस्तुओं को अथवा एक समुदाय की वस्तुओं को, दूसरा समुदाय आक्रमणपूर्वक छीना-झपटी करते रहा या छीना झपटी के लिए आक्रमण करते रहा । इसके विपरीत

इसकी प्रतिरोध करने का कार्यक्रम अनवरत रहा ही । इस विधि से उक्त दोनों प्रयोजनों के लिए जो-जो वस्तुएं प्राप्त हुईं उनको आज की स्थिति में हम 'अर्थ' का नाम दे सकते हैं ।

कबीला युग के साथ भी नस्ल रंग की विपदाएं बारंबार मंडराती ही रही । बार-बार आक्रमण और प्रतिरोध के लिए तैयारी, आहार-आवास-अलंकार प्रजनन कार्य प्रणाली के लिए बारंबार परिवर्तन जैसा एकोदर संतानों में से ही परस्पर प्रजनन संबंध, दूसरा एकोदर न हो ऐसा प्रजनन संबंध, जिसे आज की भाषा में विवाह संबंध कहते हैं, स्वाभाविक रहे आया । ऐसे भय और द्वेष से त्वस्त कबीला और ग्राम समुदाय राजा और गुरु के आश्वासनों पर राजगद्दी और धर्मगद्दी के लिए अर्पित हुए । राजा और गुरु की मान्यता क्रम से जो कुछ भी आहार-आवास-अलंकार के रूप में प्राप्तियाँ थी और शरीर और परिवार (पहचाना हुआ निश्चित संख्यात्मक मानव की सीमा) की सुरक्षा अर्थात् छीना-झपटी, आक्रमणों से मुक्ति दिलाने के आश्वासनों पर राजगद्दी में समर्पित हुए । सद्बुद्धि, सत्प्रवृत्तियाँ को सुलभ करने के आश्वासनों पर धर्मगद्दियों पर समर्पित हुए । इसी के साथ-साथ क्लेशों से मुक्ति पाने के आशय तत्कालीन सभी मानवों में समाया रहा । उसके सफलता के लिए आश्वासन घोषणा सबको अच्छा लगता रहा । इसी आधार पर राजगद्दी और धर्मगद्दी के प्रति आस्था निर्मित हुई । आस्था का तात्पर्य न जानते हुए भी किसी अस्तित्व को स्वीकारने से है । इस प्रकार आस्थावाद राजगद्दी, धर्मगद्दी की स्थापना, जनमानस में उसकी स्वीकृति रही । यहाँ उल्लेखनीय और स्मरणीय घटना यही है अर्थात् स्मरण में रखने योग्य घटना यह है कि धर्म को लोकमानस का न समझना रहा ही साथ ही धर्म को अपने स्वरूप में प्रमाणित करने योग्य धर्मगद्दी की स्थापना हुई नहीं साथ ही राज्य सामान्य रूप से मानव सहज वैभव को ध्वनित करता है, मानव को समझे बिना ही राज्य की स्थापना शासन के रूप में स्थापित हुई । मूलतः शासन का आरंभ घटना काल धर्म प्रधान रहा है राजा जिस धर्म का होता रहा, पूरे देश निवासी अर्थात् ऐसे धर्मावलम्बी सभी व्यक्ति होने के आधार पर धार्मिक राज्यनीति प्रभावशील रही । ऐसे विविध समुदाय भी राज्य और धर्म के आश्वासनों को स्थापित करने में सफल होते रहे हैं । धार्मिक मान्यताओं (आस्थाओं) में अंतर्विरोध होता आया फलस्वरूप धर्म का अथवा धर्मनीति का अथवा धर्म शासन का पकड़ ढीला होना शुरू हुआ । इसी बीच धातुयुग से समृद्ध होने के उपरान्त विस्फोटक तंत्र रूपी बारूद-बंदूक-तोप तक पहुँचे । इसी के साथ-साथ कबीला ग्राम युग तक सम्पन्न किए गए जीवों के उपयोग के साथ हाथी-घोड़ा का उपयोग हो चुकी थी,

अब यह राज्य-राज्य के बीच युद्ध के लिए एक बहुत बड़ी संख्याओं में संग्रहित रहा । तलवार पहले से ही रही, तोप बंदूक और जुड़ गया । धातु युग के साथ-साथ बाण तंत्र भी प्रचलित हो चुकी थी । इस प्रकार युद्धतंत्र, उसकी गुणवत्ता विभीषिका की ओर बढ़ी और विभिन्न भौगोलिक आहार-आवास-अलंकार वस्तुएं प्रचुर होता आया । इस प्रकार संघर्षरत राज्य और धर्म अब राज्य प्रधानता को स्थापित करने के लिए कर विधियों से पूरा संग्रह कार्य में अग्रसर हुआ । असंतुलित संग्रह का स्वरूप अर्थात् सभी लोग ऐसा संग्रह नहीं कर सके, ऐसा संग्रह राजगदियों में अथवा कोषों में हुआ । लोकमानस में ऐसी घटना की सान्त्वना को राजगद्दी और धर्मगद्दी दोनों मिलकर देश सुरक्षा को, धर्म की अखंडता को और विस्तारवाद को ध्यानाकर्षण में लाते रहे, सान्त्वना देते रहे ।

उक्त स्वरूपों में अनुप्राणित राज्य, धर्म और जनता अथवा राज्यवासी समुदाय अपने-अपने कल्पनाशीलता-कर्मस्वतंत्रता को भी प्रयोग करते रहे । उक्त सभी प्रकार के उत्पादनों के क्रम में ग्रामोद्योग, कुटीर उद्योगों की स्थापना हुई । इसके आरंभिक काल में वस्तु विनिमय प्रणाली प्रभावशील रही । राजगद्दी के कर-विधि कार्यक्रम के साथ ही वस्तु-विनिमय प्रणाली में भी लाभार्जन के लिए प्रवृत्त हुआ । यही लाभोन्माद का प्रारंभिक चरण माना जा सकता है । इसके उपरान्त विभिन्न राज्यों में विभिन्न प्रकार के वस्तु विनिमय के स्थान पर मुद्रा प्रचलन स्थापित हुई । आरंभिक समय में धातु मुद्रा का प्रचलन स्थापित होना इतिहास में भी अंकित है । धातुओं पर लिखे गये संख्यात्मक मूल्यों के आधार पर वस्तुओं का विनिमय आरंभ हुआ । यहाँ उल्लेखनीय घटना यही है 'इसके पहले वस्तु विनिमय प्रणाली जब स्थापित हुई तब धातु मुद्रा चलन के साथ भी श्रम-मूल्य का मूल्यांकन, उसकी प्रणाली, पद्धति, नीति स्थापित नहीं हो पायी ।'

उक्त परिस्थिति प्रणालियों से गुजरता हुआ राज्य और धर्मों के चलते, मानव का ही कर्मस्वतंत्रता-कल्पनाशीलता के चलते वैज्ञानिक युग इस धरती पर आरंभ होना पाया गया । यह स्थापित होने में जो कुछ भी परेशानियाँ अथवा अवरोधक बनी वह विशेषकर धर्मगदियों के पक्ष से ही घटित होते आयी । वैज्ञानिक घटना का प्रमाण इस धरती पर नियति क्रमानुषंगीय विधि से स्वीकृत रही है इसलिए यह अपने ही विधियों से स्थापित हुई । यह नियम और सिद्धांत के रूप में उदय हुआ । सभी नियम पुर्जों को अलग-अलग कर देखने की विधियों से आयी । अर्थात् किसी एक को अनेक भागों में बांटकर देखने के क्रम को नियम कहा गया है । इस सभी भागों को जोड़कर एक कार्य



घटना को प्रमाणित कर देने की प्रणाली पद्धति को सिद्धांत कहा गया । इस क्रम को मानव कुल के लिए उपकार रूप जो समीचीन है अथवा उपलब्ध है वह तीन स्वरूप में है, दूरगमन, दूरश्रवण, दूरदर्शन । दूसरे विधा में विस्फोट तत्व जो पहले से ही रही, उसको हथगोला, बम के रूप में उपयोग करना, विध्वंस करना, विध्वंसकारी मानसिकता से तैयार किया । युद्ध और प्रतिरोध तो पहले से ही रहा । यह और आधुनिक, अत्याधुनिक होते-होते दूर मार अथवा प्रक्षेपण, विध्वंसक कार्यों के रूप में प्रयोग सिद्ध कर लिया । इसी क्रम में आहार, आवास, अलंकार में से आवास और अलंकार विधाओं में परिवर्तन हुआ । वर्तमान में सौ-सौ मंजिल तक की इमारतें देखी गई । स्वचालित यांत्रिकीय प्रणाली विकसित होकर वस्त्र, कागज पत्र, धातु कार्य विपुल रूप में केन्द्रीयकृत विधि से उत्पादन होने लगी और पीढ़ी से पीढ़ी में बेरोजगारी बढ़ी । किसी एक या दो धातुओं को अन्य सभी वस्तुओं को मूल्यांकन करने का आधार, ऐसे आधारभूत अर्थात् मूल्यांकन के आधारभूत धातु जिस देश के कोषालय में अधिक होता गया उन पर आधारित पत्र-मुद्रा का मूल्य बढ़ता गया । इस प्रकार वस्तु का प्रतीक धातु हुआ, धातु का प्रतीक पत्र हुआ । इस बीच चर्म मुद्रा भी प्रचलित होने की बात सुनने में आती है । इस प्रकार अब आधुनिक युग के अनुसार अर्थशास्त्र केवल अर्थ के अध्ययन के रूप में उभरी । अर्थ का अध्ययन वस्तु के प्रतीकात्मक मूल धातु, उसके संग्रहण, उसके तादात पर आधारित पत्र मुद्रा, पत्र मुद्राओं पर आधारित अथवा पत्र मुद्रा रूपी मूल्यों के आधार पर मूल्यांकित वस्तुओं का स्वरूप बन गई । इन सभी प्रयास में लाभ ही प्रधान तत्व हुआ । लाभ का स्वरूप सदा ही, जब से मानव में लाभ का आशा शुरू हुआ तब से, कम देकर अधिक पाना प्रवृत्ति रहा है । कितना कम देकर कितना अधिक पावे इसका ध्रुव अभी तक प्रचलित अर्थशास्त्रों के आधार पर प्रचलित नहीं हो पायी । अभी तक की प्रचलित अर्थशास्त्र उन्मुक्त विधि से, और नियंत्रित विधि से सोचा गया । दोनों अर्थ चिन्तन लाभापेक्षी रहा है । और ऐसे लाभ पाने की विधि में कृत्रिम अभाव का एक प्रधान तकनीकी मानी गई । यह मुद्रा रूपी पूंजी पर आधारित रहना पाया गया । कृत्रिम अभावपूर्वक सर्वाधिक लाभ की अपेक्षा सर्वाधिक घटनाओं में घटित हो भी गया । यहाँ उल्लेखनीय बात यही है कि विगत में सोचा गया । दोनों प्रकार के अर्थशास्त्र यह भी मानते आये हैं कि एक इकाई को लाभ होने के लिए दूसरे इकाई को हानि होती है । इसके पश्चात भी दोनों प्रकार से सोचा गया अर्थशास्त्र लाभ-हानि मुक्त अर्थशास्त्र और व्यवस्था को प्रणयन करने में असमर्थ रहे हैं । यही

बिन्दु है इस बिन्दु से इंगित विधि से होने वाली पीड़ा के फलस्वरूप अर्थशास्त्र का पुनर्विचार होना एक आवश्यकता के रूप में देखा गया । इसी समस्या के समाधान रूप में आर्वतनशील अर्थशास्त्र को प्रस्तावित करने और प्रणेता प्रेरणा स्त्रोत स्थापित करने का अवसर प्राप्त हुआ ।

इस वर्तमान में इस धरती पर मानव परंपरा में लेन-देन का जो क्रियाकलाप है पत्र मुद्रा पर आधारित और गतिशील होना पाया जाता है । पत्र मुद्रा किसी धातु मुद्रा अथवा धातु के तादाद पर आधारित है । यह धातु संग्रहण अथवा धातु कोषालय प्रत्येक राष्ट्र अथवा राज्य के अधीनस्थ मानी जाती है और देखा जाता है । हर वस्तुएं जो मानव से उत्पादित रहता है मानव का सृजनशीलता के प्रमाणों के रूप में देखा जाता है । धातुओं (सोना-चांदी) का संग्रहण स्वयं कोई मानवोपयोगी वस्तु के रूप में दिखाई नहीं पड़ती । औषधियों के रूप में लाखों में एक आदमी इसका उपयोग किया होगा । ऐसे अनुपयोगी वस्तु उपयोगी वस्तु के बीच में मानदंड के रूप में स्वीकारना, भटकाव का आधार हुआ । उसके प्रतीक रूपी पत्र मुद्राएं अनेक तोड़-मरोड़ का रास्ता खोल दी । जिस देश में धातु कोष कम होता गया उस देश के पत्र मुद्रा का मूल्य घटता गया जिस देश का धातु संग्रहण मजबूत होता गया अर्थात् बढ़ता गया उन-उन देश के पत्र मुद्रा का मूल्य बढ़ता गया । जबकि आखों में दिखने के लिए यह सब कागज ही दिखते हैं । प्रतीक मुद्रा मुद्रा के प्रतीक रूप में छपी इस कागज पर किसी में कुछ नाम संख्या, किसी में कुछ नाम संख्या लिखा रहता है और उनमें एक से हजारों संख्या लिखी रहती है । ऐसे कागजों को वस्तुओं के अनुपलब्ध की स्थिति में, किंवा इसके मूल में जो बहुत सारे धातु कोष रहते हैं, वह सब मिलकर भी एक व्यक्ति के लिए अनाज या एक व्यक्ति का प्यास बुझाने के स्थान पर कार्य नहीं कर सकता । यह एक सामान्य व्यक्ति को हृदयंगम हो सकता है, विद्वान एवं मनीषी व्यक्तियों के बारे में कहना ही क्या ? इस प्रकार इस स्वरूप में हम प्रतीक मुद्राओं को दो प्रकार से गणना कर सकते हैं - (1) धातु कोष (2) पत्र कोष । इनका परस्पर तारतम्य धातु कोष के आधार पर पत्र कोष का तादात एक नियंत्रण रूप प्रदान करने के लिए मानव एक रेखा बना लेता है जैसा 100 संख्यात्मक पत्र मुद्रा में एक तोला सोना, दसों हजार संख्यात्मक पत्र मुद्रा के बदले में एक तोला सोना । यह भी एक मान्यता और आस्था पर आधारित कार्यक्रम रहा है इसमें व्यवहारिक और सार्थक कोई आधार दिखाई नहीं पड़ता । ऐसा क्रम रहस्यमयी स्थिति का विस्तार बनाता गया । यही कृत्रिम अभावों का कारण बन चुकी है क्योंकि पत्र मुद्रा के अधीन में संपूर्ण वस्तुओं को ग्रसित

हुआ देखा जाता है । इसका स्पष्ट परिणाम यही हुआ जहाँ सर्वाधिक पत्र मुद्राएं संग्रहित अथवा निर्मित हैं, वहीं वस्तुएं कैद होना पाया जाता है । ऐसी घटनाओं को घटित कराने योग्य व्यक्तियों का संगठन व्यापार संघ कहलाता है । ऐसी व्यापार संघ के लाभ मानसिकता के अनुरूप उपयोगी वस्तु की कैद से सर्वसुलभ होने की गति से छुटकारा बन जाती है, वस्तुओं का कैद वस्तु की गति से छुटकारा पाना बन पाता है । ऐसी मानसिकता में लाभ और लाभ के बाद और लाभ की ओर गति होना पाया जाता है । अभी तक लाभ का संतुष्टि बिन्दु कहीं, किसी देश काल में नहीं मिल पायी है । इस प्रकार अंतविहिन लाभ प्रक्रिया अथवा लाभ मानसिकता सहित सभी व्यापार विद्वान होना पाया जाता है । इससे और भी एक आकलन निष्पन्न होती है कि वस्तुओं का उत्पादन करने वाला सदैव ही गरीब रहना देखा गया ।

लाभ पर आधारित व्यापार प्रणाली वस्तु और वस्तु मूल्य के साथ ही सीमित रहना पाया जाता है । इसी के साथ अर्थात् व्यापार संघ के साथ बैर विहिन परिवार, संघ या राष्ट्र या समुदाय ही नहीं बन पाया फलस्वरूप समुदाय चेतना और समाज चेतना के लिए प्रतिरोधक अथवा विरोधी मानस बन बैठा । उत्पादित वस्तुओं में गुणवत्ता और कला मूल्यों में (उत्पादित वस्तु का आकार-प्रकार, सजावट और सुरक्षा विधि) श्रेष्ठता जिससे मानव में जो अच्छा लगने की एक सहज क्रिया है उसके अनुसार स्वीकृत हो जाए । गुणवत्ता का तात्पर्य किसी भी वस्तु की कार्यशीलता, उपयोगिता के अर्थ में है । कार्यशीलता की निरंतरता मानव सहज रूप में अपेक्षित है । यह विशेषकर संपूर्ण प्रकार के यंत्रों आवास विधाओं में देखा जाता है । जहाँ तक अलंकार वस्तु होते हैं और आहार वस्तुएं आदि काल से अभी तक वैसे ही दिखाई पड़ती हैं । इस प्रकार आहार व्यवस्था, मानव इस धरती पर अवतरित रहने के पहले से ही समृद्ध रहा है, उसे पहचानने में मानव कुल को अवश्य समय लगा है । अलंकार और आवास संबंधी परिवर्तनों को अपनाता आया है । इसी के साथ सभी यंत्र निर्मित होने के उपरांत ही यह सभी व्यापार के फन्दे में फंसा ही है । व्यापार लाभ के फन्दे में लटका है । लाभ शोषण पूर्वक संग्रह, भोग, अतिभोग, बहुभोग की ओर धंसता ही जा रहा है । इसी के अनुरूप कला कलाकारियाँ और कलाविदों का एक खास पहचानने योग्य समुदाय भी तैयार हो चुकी है । जबकि ऐसे व्यापारविद समुदाय और कलाविद समुदाय कहीं भी उत्पादन के लिए चिन्हित रूप में सहायक नहीं हैं । इसी व्यापार के विस्तार के लिए ही अधिकांश अर्थशास्त्रों का प्रणयन हो चुकी है । इससे अनुप्राणित

व्यापारी, कलाविद इन दोनों प्रकार के मानसिकता से राज्य संस्था और राजनीतिज्ञ प्रभावित होना पाया गया है । इतना ही नहीं धर्म, धर्मनीति और धर्मनीतिज्ञों-धर्मगदियों पर भी इन्हीं दो पक्ष का प्रभाव पड़ता हुआ अथवा इन्हीं दो पक्षों से यह प्रभावित होता हुआ दिखाई पड़ता है । इन सभी घटनाओं को ध्यान में लाने पर निष्कर्ष यही निकलता है :-

- (1) व्यापार विधि से समाज नहीं बन सकता ।
- (2) व्यापार विधि से समुदायों में अन्तर्विरोध मिट नहीं सकता ।
- (3) व्यापार विधि से बैर विहिन परिवार हो नहीं सकते, समझौते में भले ही सांत्वना पाते रहे ।
- (4) व्यापार विधि से धर्म सफल नहीं हो सकता ।
- (5) व्यापार विधि से कोई राष्ट्र राज्य-व्यवस्था सार्वभौम, अखंड और अक्षुण्ण नहीं हो सकती ।
- (6) व्यापार विधि से कोई भी व्यक्ति समृद्ध नहीं हो सकता । क्योंकि संग्रह सुविधा और लाभ का तृप्ति बिन्दु नहीं होता ।
- (7) व्यापार विधि से सार्वभौम शुभ (समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व) घटित नहीं हो सकता ।

इन निष्कर्षों के साथ ही विकल्प की ओर दृष्टिपात करना एक आवश्यकता है ।

मध्यस्थ दर्शन (सहअस्तित्ववाद)

प्रणेता एवं लेखक: अग्रहार नागराज

सम्पूर्ण वांडमय डाउनलोड:

[www.madhyasth.org](http://www.madhyasth.org)

[www.bit.ly/dpsroot](http://www.bit.ly/dpsroot)